**International Journal of Hindi Research**
**ISSN: 2455-2232, RJIF (Impact Factor) 5.22**
**www.hindijournal.com**
**Volume 2; Issue1; January 2016; Page No. 04-06**

# हिंदी काव्य में अस्तित्व–बोध (प्रसाद, निराला और बच्चन के संदर्भ में)

**डॉ. गीता यादव**

ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय कोसली

**सारांश**

हिंदी काव्य में अस्तित्ववाद के प्रभाव को देखने की कोशिश प्रायः स्वातन्त्र्योत्तर युग से शुरू होती है, पर अस्तित्व का प्रश्न चूँकि मनुष्य की मूल प्रकृति से जुड़ा हुआ है इसलिए मानव–सृजित किसी भी साहित्य में इसकी खोज की जा सकती है। यद्यपि इसके त्रासमय रूप के दर्शन छायावादोत्तर काव्य से होने आरंभ होते हैं पर उससे पहले छायावाद से ही कवि का व्यक्तिवादी स्वर सुनाई देने लगता है। प्रसाद, निराला और बच्चन जैसे कवियों की रचनाओं का भाव–बोध यह प्रमाणित करता है कि स्वतंत्रता–पूर्व के हिंदी काव्य में ही अस्तित्ववादी चिंतन के बीज दिखाई देने लग जाते हैं। और यह चिंतन पश्चिम प्रेरित विचारधारा के अनुसरण–मात्र के ही रूप में नही है अपितु कवि के जीवन की परिस्थितियों के सहज प्रस्फुटन के रूप में है।

**मूल शब्द–**अस्तित्ववाद, निरर्थकता–बोध, अलगाव, मृत्यु–बोध।

## प्रस्तावना

पश्चिमी जगत में अस्तित्ववाद का जन्म आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक साम्राज्यवाद के परिणामस्वरूप हुआ जिसकी प्रमुख चिंता यह है कि व्यक्ति बहुत से पद्धार्थों में से एक पद्धार्थ बनकर रह गया है। कृष्ण पक्ष के चंद्रमा की भाँति उसका व्यक्तित्व प्रतिक्षण घिसता जा रहा है, टूटता और खोता जा रहा है। पूँजीवाद और चर्चवाद के विरूद्ध कीर्केवाद से शुरू हुआ यह चिंतन नीत्शे से होता हुआ जब ज्यॉ पॉल सार्त्र तक पहुँचता है, तब तक विश्व एक औद्योगिक कांति और दो–दो महायुद्धों की भेंट चढ़ जाता है। और पश्चिमी समाज 'ईश्वर के मर जाने' से लेकर आत्महत्या तक को जायज ठहराने की घोषणा कर चुका होता है, क्योंकि उसे ऐसे लगा कि विभिन्न प्रकार की साम्राज्यवादी ताकतों के निरंकुश होने के कारण उसके अस्तित्व की बुनियाद हिल चुकी है। 'Encyclopedia Britenica' में अस्तित्ववाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है – सामान्यतः इसे संसार के दृष्टिकोण और नीतियों के विरूद्ध विद्रोह के रूप में चित्रित किया गया है जिसमें व्यक्ति–मानव ऐतिहासिक और प्राकृतिक प्रक्रिया में असहाय खड़ा है।

हिंदी काव्य में अस्तित्ववाद के प्रभाव को देखने की कोशिश प्रायः स्वातन्त्र्योत्तर युग से शुरू होती है, पर अस्तित्व का प्रश्न चूँकि मनुष्य की मूल प्रकृति से जुड़ा हुआ है इसलिए मानव–सृजित किसी भी साहित्य में इसकी खोज की जा सकती है। यद्यपि इसके त्रासमय रूप के दर्शन छायावादोत्तर काव्य से होने आरंभ होते हैं पर उससे पहले छायावाद से ही कवि का व्यक्तिवादी स्वर सुनाई देने लगता है। यहाँ कवि का आग्रह ही 'मैं शैली' पर है – भाव और अभिव्यक्ति दोनों स्तरों पर। छायावाद से कवि के 'नदी के द्वीप' बनने की शुरुआत हुई जहाँ कवि अपना निज अस्तित्व समाज में मिला देने को तैयार नहीं है। उसे अकेले का क्रन्दन स्वीकार है, पर संसार की लय में खोजना नहीं। कामायनी में मनु कहता है –

''तुम कहती हो विश्व एक लय है, मैं उसमें,
लीन हो चलूँ? किंतु धरा है क्या सुख इसमें।
क्रंदन का निज अलग एक आकाश बना लूँ,
उस रोदन में अट्टहास हो तुमको पा लूँ।''[1]

जयशंकर प्रसाद की कामायनी में मनु ऐसा पात्र है, जो अस्तित्वबोध की पीड़ा से युक्त है। उसकी यह पीड़ा बिल्कुल वैयक्तिक संदर्भो से जुड़ी है। उसके सामने सबसे बड़ा प्रश्न है – अपना अस्तित्व बनाए रखने का और इस प्रक्रिया में उसे सारी प्रकृति और सारा जीवन निज अस्तित्व रक्षा में लीन दिखाई पड़ता है –

''निज अस्तित्व बना रखने में जीवन आज हुआ व्यस्त।''[2]

अस्तित्ववाद के अनुसार –'विश्व में जिस तरह का जीवन पाया जाता है, उसमें मानवीय कामनाओं की पूर्ति संभव नहीं है।' मनुष्य अपनी मर्जी के विरुद्ध इस संसार में फैंक दिया गया है और अब उसके सामने सबसे बड़ा प्रश्न है कि इस जीवन को जिया कैसे जाए? यह निरर्थकता–बोध, अलगाव और इनसे उत्पन्न मृत्यु–बोध अस्तित्ववादी चिंतन के मूल में है। मनु की भी सबसे बड़ी समस्या यही है –

''तो फिर क्या मैं जिऊँ और भी–जीकर क्या करना होगा?
देव बता दो, अमर वेदना लेकर कब मरना होगा।''[3]

प्रकृति के महाप्रलय के बाद बचा मनु अपने चारों ओर मौत और विनाश का तांडव देखता है और बदले में अपने होने के प्रति भी शंकित हो उठता है –

''मौन! विनाश! विध्वंस! अंधेरा! शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है, अरी अमरते! तुझको यहाँ कहाँ अब ढाँव।''[4]

ऐसा लगता है मानों दो–दो महायुद्धों की विनाशलीला भोग चुका अस्तित्ववादी अपने समय का यथार्थ चित्रण कर रहा हो। यूरोप में महायुद्ध हुए – शासकों के स्वार्थ और अहंकार के कारण और परिणाम भोगा – आम जन ने; भविष्य अंधकारमय हुआ – एक पूरी पीढ़ी का। मनु भी कहता है –

''मणि–दीपों के अंधकारमय अरे निराशापूर्ण भविष्य,
देव–दंभ के महामेघ में सब कुछ ही बन गया हविष्य।''[5]

अस्तित्ववादी निराशा, त्रास, निरर्थकता और अलगाव से मिलकर मनु का चरित्र बना है। प्रकृति के महाविनाश और प्रलय के सामने वह अपने को छोटा और क्षुद्र मानने लगता है। मनु व्यक्ति के टूटे हुए अभिमान का प्रतीक है –

''आज अमरता का जीवित हूँ मैं वह भीषण जर्जर दंभ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम पात्र मया सा विष्कंभ।''[6]

वह लगातार उस बेचैनी और खालीपन का शिकार रहता है, जो अस्तित्ववादी भाव–बोध की पहचान है और जिसकी परिणति अलगाव के भयंकर रूप में होती है –

''शापित–सा मैं जीवन का यह ले कंकाल भटकता हूँ,
उसी खोखलेपन में जैसे कुछ खोजता अटकता हूँ।''[7]

जब ईश्वर की अद्वितीय देन यह जीवन श्राप सा लगने लगे और उसकी अनुपम रचना मानव शरीर कंकाल सा दिखाई देने लगे, तो इसे अस्तित्ववादी त्रास के अतिरिक्त और कोई नाम नहीं दिया जा सकता। परिस्थितियों से आक्रांत मनु पलायन में ही सुख मानता है–

''विस्मृति आ, अवसाद घेर ले, नीरवते! बस चुप कर दे,
चेतनता चल जा, जड़ता से, आज शून्य मेरा भर दे।''[8]

यह पलायन स्वाभाविक है क्योंकि अस्तित्ववाद के अनुसार इस संसार में जिस प्रकार का जीवन पाया जाता है उसमें सफलता की तो क्या बात करें, जीवन को सुंदर और बेहतर बनाने के उपाय भी नहीं है। निराश, हताश, निरर्थकता–बोध से ग्रसित मनु कह उठता है –

''किंतु जीवन कितना निरूपाय! लिया है देख, नहीं संदेह
निराशा है जिसका परिणाम, सफलता का वह कल्पित गेह।''[9]

निराला के राम में भी यही निराशा है। उन्हें भी कोई संदेह नहीं है कि मनुष्य जीवन के सभी कर्मों की परिणति असफलता और निराशा में होती है। राम के माध्यम से निराला उस परिवेश और परिस्थितियों का भी चित्रण करते हैं जहाँ व्यक्ति को अपना जीवन भार लगने लगता है, आत्म–धिक्कार और आत्म–ग्लानि से भर उठता है –

''धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।''[10]

मनुष्य का सारा जीवन उन साधनों की खोज में बीत जाता है, जिससे वह अपने जीवन को अर्थ दे सके। यह राम के जीवन की विडंबना नहीं है बल्कि हर आदमी के जीवन की विडंबना और त्रासदी है कि जीवन की लड़ाई में उसकी हार निश्चित है – ''मित्रवर, विजय होगी न समर''[11] और ऐसा इसलिए नहीं है कि व्यक्ति रूप में राम शक्तिशाली नहीं है या असमर्थ है बल्कि इसलिए कि जिससे उसका सामना है वह आसुरी (आणविक) शक्तियों से संपन्न है। यहाँ तक कि उसे देवताओं का भी साथ है। हताश और निराश राम कह उठते हैं – ''अन्याय जिधर है उधर शक्ति''[12] ऐसे में मनुष्य का कहाँ तक पार बसेगा? राम के जीवन का दुख आम आदमी के जीवन का दुख है, राम के जीवन की कथा आम आदमी के जीवन की कथा है। सरोज–स्मृति में भी वे कहते हैं –

''दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ आज जो नहीं कहीं।''[13]

छायावाद के बाद हिंदी की व्यक्तिपरक गीतधारा, जिसके प्रमुख कवि बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, भगवतीचरण वर्मा हैं, काफ़ी हद तक हिंदी की अस्तित्ववादी चिंतनधारा को प्रभावित करने में सक्षम रही। जिस प्रकार का निराशाजन्य वातावरण अस्तित्ववादी साहित्य में देखने को मिलता है, वह छायावाद या प्रगतिवाद में नहीं बल्कि हालावादी काव्य में दृष्टिगोचर होता है। जिस प्रकार अस्तित्ववादी कवि अपने आसपास के वातावरण से, ईश्वर की बनाई हुई इस दुनिया से और यहाँ तक कि खुद से भी अलगाव महसूस करता है, उसी प्रकार का संत्रासपूर्ण वातावरण हालावादी काव्य की पहचान है। इस भरी–पूरी दिखने वाली दुनिया में कवि किस भाँति नियति और समाज के द्वारा अलगाव की स्थिति में डाल दिया जाता है, कवि बच्चन के काव्य में द्रष्टव्य है –

''संघर्ष में टूटा हुआ, दुर्भाग्य से लूटा हुआ,
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं।''[14]

छायावादी कवि निराला पहले ही इस अकेलेपन की मार्मिक अभिव्यक्ति कर चुके थे–

''देख चुका, जो–जो–आये थे, चले गये,
मेरे प्रिय सब बुरे गये, सब भले गये!
क्षण भर की भाषा में, नव–नव अभिलाषा में,
आये थे जो निष्ठुर कर से मले गये,
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे छले गये।''[15]

अस्तित्ववादी चिंतन उस अनुभूति का चिंतन है, जिसके अनुसार कवि मानता है कि 'मनुष्य को उसकी मर्जी के विरुद्ध इस संसार में फैंक दिया गया है और अब सारी परिस्थितियाँ मिलकर उसे निराशामय अंधकार में ढकेल रही हैं। डॉ॰ बच्चन लिखते हैं –

''जानता यह भी नहीं मन, कौन मेरी थाम गर्दन
है विवश करता कि कह दूं, व्यर्थ जीवन भी मरण भी।''[16]

एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं –

''मुझे न सपनों से बहलाओ!
धोखा आदि–अन्त हैं जिनका क्या विश्वास करूँ मैं इनका;
सत्य हुआ मुखरित जीवन में मत सपनों का गीत सुनाओ।''[17]

ये आदर्श अस्तित्ववादी चेतना के कण–कण में बसा हुआ है, जैसा कि स्वयं डॉ॰ बच्चन लिखते हैं – ''जो लोग मेरे 'निशा–निमंत्रण', 'एकांत–संगीत', 'आकुल–अंतर' से परिचित हैं, वे जानते होंगे कि ये मेरे उस काल की अभिव्यक्तियाँ हैं, जब मेरे जीवन की दुर्दम परिस्थितियों ने मुझे पीड़ा, वेदना, निराशा, अवसाद, विषाद, अंधकार, एकाकीपन, जीवन की लक्ष्यहीनता को प्राणों की तरह अपनाने को विवश कर दिया।''[18] डॉ॰ शिवकुमार मिश्र ने डॉ॰ बच्चन के विषय में ठीक ही लिखा है – ''छायावाद के उत्तरकालीन विघटन को यदि उसकी संपूर्ण विविधताओं में कहीं देखा जा सकता है तो बच्चन की ही कृतियों में। उनका काव्य तत्कालीन परिस्थितियों से आक्रांत, निराश, विषण्ण और टूटे हुए युवक–मानस का तो जीवित चित्र प्रस्तुत करता ही है, छायावाद की उत्तरकालीन ऐकांतिकता और अस्त–व्यस्तता का भी यथार्थ चित्रागार है।''[19]

अल्बेयर कामू का एक उपन्यास है आउटसाइडर। साहित्य में इसे समाज–बहिष्कृत या अजनबीपन का नाम दिया गया है। आउटसाइडर की सबसे बड़ी समस्या है कि वह समाज के परंपरागत ढांचे में स्वयं को फिट नहीं बैठा पाता, अतः उसके और

समाज के बीच निरंतर संघर्ष की स्थिति बनी रहती है। आउटसाइडर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जीवन अपनी शर्तों पर जीता है जैसा कि कामू लिखते हैं –''मैंने एक खास ढर्रे की जिंदगी बिताई है, चाहता तो दूसरी तरह भी बिता सकता था। मेरा हाथ पकड़ा किसने था?''[20] बच्चन भी लिखते हैं –

''मैं स्वयं करता रहा हूँ / जिस तरह प्रतिरोध अपना/
मानवों में कौन मेरा / उस तरह से कर सकेगा?''[21]

समाज जिस खास मौके पर, जिस तरह के लगे–बंधे व्यवहार की अपेक्षा व्यक्ति से करता है। आउटसाइडर उस पर खरा नहीं उतरता। वहीं पर वह न केवल ग़लत सिद्ध हो जाता है अपितु पापी और यहाँ तक कि अपराधी भी। उपन्यास में नायक द्वारा माँ की मृत्यु पर न रोने से लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं और पत्थर–हृदय समझते हैं। यहाँ तक कि जब उस पर हत्या का मुकदमा चलता है तो उसे दण्ड मिलने का आधार भी यही तथ्य बनता है। इस विडंबनापूर्ण तथ्य के बारे में वह सोचता है – ''जब सभी का यही हश्र होना है, तो इससे क्या कि उस पर मुकदमा हत्या का चले और फांसी इसलिए हो जाये कि वह माँ की अन्त्येष्टि पर रोया क्यों नहीं?''[22]
यह एक विसंगत तथ्य है, जिसका सामना हर विद्रोही को करना पड़ता है। आउटसाइडर में कामू का यह प्रश्न है, मानों बच्चन अपनी एक कविता में इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं –

''मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधु समझता,
शत्रु मेरा बन गया खुद छल रहित व्यवहार मेरा।''[23]

विद्रोही को इस बात का खेद है कि समाज किसी भी स्तर पर उसे समझने की कोशिश नहीं करता। उसके और समाज के बीच की खाई किसी भी तरह पटती नहीं। अस्तित्व की पीड़ा उसे हर क्षण सताती रहती है, जैसा कि कामू लिखते हैं – ''मैंने हर तड़के उस क्षण की राह देखी है जो मेरी सारी जिदंगी की सार्थकता, मेरे जीवन के रवैये की सच्चाई सिद्ध कर देगा।''[24] हिंदी की व्यक्तिपरक गीतधारा के विषय में डॉ॰ नगेन्द्र ने इसी तथ्य को रेखांकित किया है – ''व्यक्ति में यह चेतना जाग गयी कि मेरा अपना अस्तित्व किसी से कम नहीं है, मेरे राग–विराग, हर्ष–विषाद का मेरे लिए अधिक महत्त्व है। उसको स्वीकार न करना आत्महीनता का सूचक है और इस आत्महीनता को उसने पूरी शक्ति से झटककर दूर फैंक दिया हैं।''[25] इसी प्रवृत्ति के कारण ये कवि अपनी कमियों को भी सार्वजनिक तौर पर स्वीकारते हैं। बच्चन अपनी एक कविता में लिखते हैं –

''पाप की ही गैल पर चलते हुए ये पाँव मेरे
हँस रहे हैं उन पगों पर जो बंधे हैं आज घर में!
है कुपथ पर पाँव मेरे आज दुनिया की नजर में !''[26]

जहाँ तक बच्चन का प्रश्न है उन्होने तो एक लंबी कविता लिखी थी 'सार्त्र के नोबल पुरस्कार ठुकरा देने पर।' उस कविता में वे सार्त्र को समव्यस्क, समानधर्मा बताते हुए लिखते हैं–

''बीज है अस्तित्व का व्यक्तित्व
जिसके गीत मैने
कम नही गाए, सुनाए–
व्यक्ति की अनुभूति के,
अधिकार के,
उन्मुक्ति के,
स्वातन्त्र्य के,
दायितत्व के भी,
व्यक्ति है यदि नही निर्जन का निवासी।''[27]

अतः प्रसाद, निराला और बच्चन जैसे कवियों की रचनाओं का भाव–बोध यह प्रमाणित करता है कि स्वतंत्रता–पूर्व के हिंदी काव्य में ही अस्तित्ववादी चिंतन के बीज दिखाई देने लग जाते हैं। और यह चिंतन पश्चिम प्रेरित विचारधारा के अनुसरण–मात्र के ही रूप में नही है अपितु कवि के जीवन की परिस्थितियों के सहज प्रस्फुटन के रूप में है।

**संदर्भ–ग्रंथ**


1. संपूर्ण काव्य – जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ– 72
2. संपूर्ण काव्य – जयशंकर प्रसाद पृष्ठ–18
3. संपूर्ण काव्य – जयशंकर प्रसाद पृष्ठ–17
4. संपूर्ण काव्य – जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ–15
5. संपूर्ण काव्य – जयशंकर प्रसाद पृष्ठ–12
6. संपूर्ण काव्य – जयशंकर प्रसाद पृष्ठ–15
7. संपूर्ण काव्य – जयशंकर प्रसाद पृष्ठ–82
8. संपूर्ण काव्य – जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ–12
9. संपूर्ण काव्य – जयशंकर प्रसाद पृष्ठ–23
10. राग विराग : निराला – संपा॰ रामविलास शर्मा, पृष्ठ–113
11. राग विराग : निराला – संपा॰ रामविलास शर्मा, पृष्ठ–108
12. राग विराग : निराला – संपा॰ रामविलास शर्मा, पृष्ठ–110
13. राग विराग : निराला – संपा॰ रामविलास शर्मा, पृष्ठ–103
14. प्रतिनिधि कविताएँ – बच्चन, पृष्ठ–48
15. परिमल – निराला, पृष्ठ–52
16. प्रतिनिधि कविताएँ – बच्चन, पृष्ठ–37
17. प्रतिनिधि कविताएँ – बच्चन, पृष्ठ–48
18. संतरंगिनी भूमिका – बच्चन, पृष्ठ–8
19. नया हिंदी काव्य– डॉ॰ शिवकुमार मिश्र, पृष्ठ–124
20. अजनबी – अल्बेयर कामू, पृष्ठ–111
21. मधुकलश – बच्चन, पृष्ठ–84
22. अजनबी – अल्बेयर कामू, पृष्ठ–111
23. मधुकलश – बच्चन, पृष्ठ–38
24. अजनबी – अल्बेयर कामू, पृष्ठ–111
25. आधुनिक हिंदी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ – डॉ॰ नगेन्द्र, पृष्ठ–65
26. प्रतिनिधि कविताएँ – बच्चन, पृष्ठ–31
27. प्रतिनिधि कविताएँ – बच्चन, पृष्ठ–112